International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.newresearchjournal.com/advanced
Volume 1; Issue 6; June 2016; Page No. 21-24

मध्यकालीन भारत में परम्पराओं में बंधी नारीः प्रादुर्भाव एवं विकास का अध्ययन

अर्चना मिश्रा

शोध छात्रा इतिहास, अ.प्र. सिंह वि.वि. रीवा (म.प्र.) भारत

सारांश :

नारी समाज की जनक है। समाज की संरचना आदिम काल से लेकर आज तक जैसी भी रही हो उसमें नारी से ही परिवार का प्रादुर्भाव होता है और परिवार से समाज का निर्माण होता है। यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा कि नारी समाज की जड़ है। इस नारी को समाज ने किस रूप में रखा यह हमारे अध्ययन का प्रमुख विषय है। इतिहास में नारी तथा उनके जीवन स्तर का अध्ययन विशद विवेचन का विषय है। यह इसलिये कि इतिहास और नारी का संबंध एक गुत्थी की तरह है जिसे समझना अपने आप में एक जटिल प्रक्रिया है। इतिहास के अध्ययन में नारी की भूमिका को सामने लाने का प्रयास मुश्किलों भरा है। नर–नारी इस सृष्टि की अमूल्य रचना है जिनके परस्पर सहयोग से ही सृष्टि क्रम यथावत चला आ रहा है। यदि इनमें से किसी एक को हटा दिया जाये तो सृष्टि की व्यवस्था का क्रम विश्रंखलित हो जायेगा, इसलिये सृष्टि की व्यवस्था यथावत् चलती रहे दोनों का सामंजस्य अति आवश्यक है। वर्तमानकाल की भाँति कुछ स्थानों पर मातृसत्तात्मक परंपरा का प्राचीन काल में भी अवश्य प्रचलन रहा होगा। भारत के विभिन्न भागों में किये गये नृशास्त्रीय एवं समाजशास्त्रीय अध्ययनों से पता चलता है कि इस पितृसत्तात्मक परंपरा के लोगों में सहयोग एवं संघर्ष दोनों पाया जाता है। इस व्यवस्था में पिता से पुत्र की वंश परंपरा में वंश चलता है।

शब्द कुंजीः मध्यकालीन, भारत, इतिहास, नारी, प्रादुर्भाव एवं विकास

प्रस्तावना

मध्यकालीन राजनीति में राज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी सुल्तान होता था। शासन की संपूर्ण प्रभुसत्ता उसमें निहित थी। वह शक्ति का केन्द्र था। सर्वसाधारण उसे समाज का आदर्श मानता था। उसके नाम का फतवा पढ़ा जाता था तथा सिक्कों पर उसका नाम खोदा जाता था। सुल्तान निरंकुशता से शासन करने में अपना गौरव समझते थे यदि उसे राज्य का सर्वोच्च कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगी। [1]

नारी का मनुष्य–जाति की उत्पत्ति में ही नही वरन् समाज निर्माण में भी नारी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। एक बेटी, बहन, पत्नी और माता के रूप में वह अपने कर्त्तव्यों का पालन करती हुई जीवन का उद्देश्य व्यक्त करती है, उसी से सम्पूर्ण मानव जाति के भाग्य का निर्णय होता है। [2]

हमारे पास 3000 वर्षों के इतिहास तथा प्रागैतिहासिक अध्ययन के संबंध में किये गये शोधों में मनुष्य ही सर्वोपरि दिखाई पड़ता है। [3] इसी पूर्वाग्रह के कारण नारी–पुरूष सह संबंधों, समाज में नारी की भूमिका, मानव सभ्यता के विकास में उसकी उपस्थिति की निरंतर उपेक्षा की गयी। इतिहास और समाज में नारी की स्थिति समझने तथा उससे संबंधित अध्ययन में अनेक कठिनाइयाँ आती है। यही कारण है कि संपूर्ण विश्व में नारी संबंधी क्रमबद्ध ऐतिहासिक सामग्री सामान्य रूप से कम उपलब्ध है। मानव के अतीत का सच्चा अध्येता बनने के लिए मुख्यतः प्रागैतिहासिक से प्राप्त जानकारी का सहारा लेना पड़ता है। [4] इसके द्वारा हम उन सूक्ष्म तरीकों का मूल्यांकन एवं प्रदर्शन कर सकते हैं जिनके सहारे भौतिक और सामाजिक वातावरण मानव जीवन को प्रभावित करते रहे हैं। प्रागैतिहासिक अध्ययनोपरांत उमा चक्रवर्ती ने यह निष्कर्ष निकाला कि इस समय नारी सदा पितृसत्ता के जटिल ढांचे में नहीं जी रही थी एवं ऐसा प्रतीत होता है कि मातृसत्ता के काल में नारी की स्थिति श्रेष्ठ थी। [5] नारी पर नियंत्रण विशेष परिस्थितियों तथा विशेष प्रक्रिया के कारण हुआ होगा, क्योंकि सृष्टि के प्रारंभ में एक समय ऐसा अवश्य रहा होगा जब नारी और नर स्वच्छंद विचरण करते थे। इस यायावरी काल की अवस्था के समय तक इन्हें न तो किसी प्रकार की सभ्यता का ज्ञान था और न ही किसी प्रकार की परंपरा एवं रीति–रिवाज का। इस समय तक इनका एक मात्र उद्देश्य उदारपूर्ति था। जिसे वे दोनों आपसी सहयोग से हासिल करते थे। यह वह समय रहा होगा जब सब कुछ प्राकृतिक रहा होगा। [6]

अपने विकास क्रम में मानव अनेक संकटों से उबरकर जिया। इस संकटकाल और संस्कृत निर्माण दोनों में ही नारी मानव विकास क्रम का हिस्सा अवश्य रही होगी। नैसर्गिक नियमों के कारण नारी–पुरूष न केवल समीप आये बल्कि उन्होंने विकास क्रम में एक दूसरे की आवश्यकता को समझा होगा। यह वह काल था जब मानव का संवेदना के स्तर पर विकास होने लगा। यह विकास उसे अन्य जंगली जीवों से अलग रहने को विवश करने लगा। [7] समय बीतने के साथ ही मानव में कुछ सोचने की क्षमता विकसित हुई। इस समय तक वह स्वच्छंद प्राकृतिक तौर तरीकों को छोड़कर अपनी बुद्धि के प्रयोग से प्रकृति की रहस्य भरी गुत्थियों को खोलने लगा। इसी क्रम में उसने अपने जीवन में क्रांति पैदा करने वाले आग और चाक आदि तत्वों को खोजा। मानव विकास विभिन्न कारकों के कारण कई स्तरों पर हो रहा था। इसमें सबसे महत्वपूर्ण कारक जलवायु परिवर्तन था। [8] यह जलवायु परिवर्तन विशेष परिस्थिति के रूप में सामने आया और मनुष्य समूह में रहने की प्रक्रिया से न केवल जुड़ने लगा बल्कि समूहगत जीवन उसे सुरक्षा प्रदान करने लगा। यह काल पाशविकता का काल था इस काल में मनुष्य लगभग जानवरों की तरह रहता, भोजन इकट्ठा करता और शिकार मारता था। [9] इस काल में नारी और पुरूष के सहसंबंध बराबरी पर आधारित थे। बहुत समय तक समूह में रहने के साथ उपजी सहयोग की भावना ने मानवीय संवेदना को जन्म दिया जिसके कारण मानव समूह विशेष के लिए संस्कृति का निर्माण करने लगा। [10] समूह में रहने की इस प्रकृति की इस प्रकृति ने ही भोजन संबंधी आवश्यकताओं के लिए संघर्षों को जन्म दिया और इन संघर्षों ने मानव जीवन को महत्व जिजीविषा, महत्वाकांक्षा तथा पहचान बनाने की इच्छा को जन्म दिया। इन सभी कारणों से नारी की अपेक्षा पुरूष स्वाभाविक रूप से सक्रिय होता गया। पुरूष की इस सक्रियता ने ही उत्तरोत्तर नियंत्रण की भावना को जन्म दिया। यह नियंत्रण ही उत्तरोत्तर दृढ़ और जटिल होता गया।

भारत की मध्य पाषाणकालीन संस्कृति से गुफा चित्रों, शैलाश्रयों के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि नारियाँ इस युग में भोजन एकत्रण के साथ शिकार में भी भाग लेती थी। इस समाज में नारी की प्रजनन भूमिका के प्रति आदर भाव था। इसलिए नारी की यौनिकता को कोई खतरा नहीं था। [11] नव पाषाण स्तर की प्रमुख उपलब्धि थी खाद्य–उत्पादन का अविष्कार, पशुओं के उपयोग की जानकारी और स्थिर ग्राम्य जीवन का विकास। इसका मानव इतिहास में अदभुत महत्व है क्योंकि इस नयी कृषि जीवन पद्धति का अत्यंत महत्वपूर्ण परिणाम था जनसंख्या वृद्धि। इसलिए इसे नवपाषाण क्रांति की संज्ञा दी जाती है। इसलिए यह समझना चाहिए कि नवपाषाण जीवन पद्धति का विकास एक धीमी और क्रमिक प्रक्रिया है। यह कार्य एकाएक संपन्न नहीं हो सकता। इस संस्कृति के प्रसार में विकासवादी और विसरणवादी दोनों ही पद्धतियाँ काम करती हैं। इस क्रांतिकारी युग में मनुष्य ने पशुपालन और कृषि का कार्य प्रारंभ किया। फलस्वरूप उत्पादन की इस नवीन प्रक्रिया में नारी की भूमिका का निर्धारण हुआ होगा। वस्तुतः ग्राम्य जीवन के स्थायित्व ने मानव को व्यवस्था और नियम बनाने को प्रेरित किया और इस व्यवस्था निर्माण ने नारी को अनेक प्रकार की सुविधायें प्रदान की। उस नवीन जीवन पद्धति के लिए सहयोग और सहसंबंध की आवश्यकता थी। इसलिए भी नारी पुरूष के मध्य एक सहज सहयोग के मनोविज्ञान का उदय हुआ। क्योंकि अब आपसी सहयोग से उत्पादित भोजन के कारण उन्हें जंगलों में भटकने, अनिश्चित जीवन जैसी प्रक्रियाओं से छुटकारा मिल गया। फलस्वरूप अब उनके पास अन्य विकास के पर्याप्त अवसर थे। उत्पादन की इस नवीन व्यवस्था ने कई तरीकों से पुरूष के मनोवैज्ञानिक तरीकों से भी बल प्रदान किया।

जनसंख्या की वृद्धि ने मानव को अन्य जंगली जीवों की तुलना में अधिक बलवान बना दिया। इसलिए मानव समूहों ने प्रजनन काल में नारी की विशेष सुरक्षा की व्यवस्था की। धीरे–धीरे नारी इस सुरक्षा की आदी हो गयी और पुरूषों में नारी पर नियंत्रण की भावना बढ़ने लगी। [12] यह नियंत्रण नारी की सुरक्षा की दृष्टि से था। अतः नारी की तरफ से इसका प्रतिरोध नहीं हुआ। फलस्वरूप इस सुरक्षा रूपी नियंत्रण ने अपने को अत्यधिक प्रभावशाली बना लिया। यह वह समय था जब उत्पादन में विस्तार हुआ, काम बढ़ा, नयी श्रम शक्ति की आवश्यकता बढ़ी, सामाजिक प्रक्रिया निरंतर जटिल होती गयी। समय की प्रभावित धारा के साथ लिंग आधारित काम का बंटवारा हुआ। [13] लिंग आधारित श्रम विभाजन ने संपूर्ण विश्व को लगभग बांट सा दिया। बाहरी दुनिया से अब नारी का संबंध न के बराबर रह गया। इस नवीन सामाजिक परिस्थिति ने नारी की सामाजिक स्थिति

में परिवर्तन ला दिया। एक ओर तो पूँजीवादी श्रम प्रक्रिया प्रारंभ हुई दूसरी ओर पितृसत्तात्मक लिंग आधारित पदानुक्रम जिसमें नारी घरेलू श्रमिक बन कर रह गयी। यानी नारी प्रजनन और अपने रख–रखाव के लिए लघु उत्पादन में फंसकर घरेलू बन गयी। [14] मिस मारिया कहती हैं ''लिंगों के बीच श्रम का असमान बंटवारा हिंसा की मदद से प्रारंभ हुआ। फिर परिवार और सरकार जैसी संस्थाओं ने एक मजबूत विचारधारा की मदद से उसे बनाये रखा। [15] नव पाषाण से लेकर सिंधु सभ्यता तक का काल वैचारिक संक्रमण का काल था। जिसमें मातृसत्तात्मक व्यवस्था दिखती तो थी किन्तु पितृसत्तात्मक व्यवस्था अपरोक्ष रूप से प्रभावी होती जा रही थी। नारी वादियों का यह मानना है कि चरवाहा युग में पहली बार पितृसत्तात्मक संबंध बने। [16]

नर और नारी दोनों परिवार के मूल हैं। नदी के दो तटों की भाँति वे सहयुक्त हैं। दोनों के बीच में ही जीवन की सच्ची धारा प्रवाहित होती है। वैदिक साहित्य में नारी और नर के सम्मिलन की उपमा पृथ्वी और द्युलोक से दी गई है। जैसे शुक्ति के दो दलों के बीच में मोती की स्थिति होती है वैसे ही नारी और नर इस दोनों के मध्य में संतति है। द्यावा–पृथ्वी एक ही संस्थान के परस्पर पूरक हैं। आकाशचारी मेघवृष्टि द्वारा पृथ्वी को गर्भधारण कराते हैं और तब वृक्ष वनस्पतियों को जन्म देता है। यही स्थिति नर–नारी या पति पत्नी की है। वे दोनों दो होते हुए भी एक हैं। दोनों के इस अभेद की स्वीकृत विवाह संस्कार है। तत्संबंधी मंत्रों में यह बात स्पष्ट कही गई है।

अमोऽहमस्मि सा त्वम्। सा त्वमसि अमोऽहम।।
समाहमस्मि ऋक् त्वम्। द्यौरहं पृथ्वी त्वम्।। [17]

अर्थात मैं यह हूँ, तू वह है, तू वह है, मैं यह हूँ। मैं साम हूँ, तृ ऋक् है। मैं द्यौ हूँ, तू पृथ्वी है। दूसरे शब्दों में कहें तो नारी वृत्ति का व्यास है और नर उसकी परिधि है जिस प्रकार ऋग्वेद के मंत्र को ही आधार बना कर उसे साम के गीत में परिवर्तित किया जाता है(ऋषि अध्यूढ़साम गीयते, छान्दोग्य उपनिषद 1/6/1) और जिस प्रकार वृत्त के व्यास को तिगुना करके परिधि बनती है उसी प्रकार वृत्त के व्यास को तिगुना करके परिधि बनती है उसी प्रकार नारी के जीवन से गुणित होकर नर का जीवन बनता है। द्युलोक और पृथ्वी लोक के साथ नर और नारी या पति–पत्नी की उपमा देने का स्पष्ट उद्देश्य यही है कि विश्व रचना के मूलभूत हेतु की भाँति वे दोनों द्विधा विभक्त होते हुए भी जीवन के समस्त व्यापारों में एक दूसरे के लिये अनिवार्य हैं।

धर्मशास्त्र के क्षेत्र में मनु ने स्पष्ट किया है–''यो भर्ता सा स्मृतांगना''[18] अर्थात जो पुरूष (नर) है वही स्त्री (नारी) है। इस मत का उद्देश्य यह बताना है कि समाज में नारी और नर का महत्व बराबर है। दोनों एक ही तंत्र के ताने–बाने हैं। संभव है कि इन्हीं संक्रमण काल में किसी समय नर–नारी में अधिकारों के वर्चस्व को लेकर मातृसत्तात्मक एवं पितृसत्तात्मक परंपराओं का उदय हुआ हो। मातृसत्तात्मक परंपरा से तात्पर्य ऐसी परंपरा से है जिसमें माता कुटुम्ब का केंद्र बिंदु होती है। परिवार का मूल पूर्वज एक पुरूष नहीं अपितु एक नारी होती है इस परंपरा में उत्तराधिकार का आधार नारी मानी जाती है। परिवार का निर्माण एक सामान्य पूर्वज की पुत्र, पौत्रादि पुरूष संतान द्वारा नहीं, अपितु नारी की पुत्री आदि नारी संतति द्वारा ही होता है। इस प्रकार की परंपरा में प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार, माता के साथ, उसके संबंध पर निर्भर होते हैं, जिसे मातृ का अधिकार भी कहा जाता है जो एक जटिल रचना है। जिसके निम्नलिखित प्रधान तत्व उल्लेखनीय है–[19]

वंश परंपरा– इसका निर्माण माता द्वारा होता है अर्थात संतान पिता के कुल की नहीं अपितु माता के गोत्र की समझी जाती है। माता के वंश का होने से इसे मातृवंशी तथा मातृकुल का नाम ग्रहण करने से इसे मातृनामी समाज कहा जाता है।

विवाह– इसे समाज में शादी के बाद पत्नी ससुराल में ना जाकर अपने पितृगृह में ही रहती है। पति उसे अपने घर न लाकर स्वयं उसके घर पर जाकर रहने लगता है। इस प्रकार की व्यवस्था मातृ स्थानीय विवाह कहलाती है।

रिक्थहरण– मातृसत्तात्मक परिवार में पुत्र को पिता की कोई संपत्ति नहीं मिलती, इसके सभी सांपतिक अधिकार माता के संबंध से ही निर्धारित होते हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि यह अधिकार प्रधान अथवा पूर्ण रूप से नारियों को प्राप्त है। क्योंकि नारी अधिकांश मातृक समाजों में सांपत्तिक अधिकारों से वंचित है। (ईसा. रि. ई. 12/851) प्रायः ऐसे परिवारों में भाई अथवा इसके अभाव में भांजा रिक्थहर होता है। यह सर्वथा स्वाभाविक है, क्योंकि इसमें पिता की संतान अपनी माता के साथ ननिहाल में रहती है वहाँ नाना के बाद माता के भाई और भानजे ही दामाद हो सकते हैं। मामा की अपनी औरत संतान तो अपनी माता के साथ दूसरे कुटुम्ब में रहती है, उसके अपने परिवार में उसकी संपत्ति ग्रहण करने वाला उसकी बहिन का लड़का ही है। उत्तर भारत में जो संबंध पिता–पुत्र में है मलाबार में वह मामा और भानजे में हैं।

उत्तराधिकार– राज्य और पौरोहित्य आदि पद सामाजिक सम्मान की विभिन्न उपाधियाँ, एक व्यक्ति के मृत होने पर दूसरे को प्राप्त होना उत्तराधिकार है। मातृ सत्तात्मक समाजों में रिक्थहरण के समान युवराज आदि पद पुत्र के स्थान पर भाई और भान्जे को मिलते हैं। त्रावनकोर, कोचीन राज्यों में उत्तराधिकारी राजा का लड़का नहीं, अपितु उसका भागिनेय (बहिन का लड़का) होता है।

सत्ता- प्रायः यह समझा जाता है कि मातृ सत्तात्मक (व्यवस्था वाले परिवार) में शासन सत्ता माता के हाथ में होती हैं, अतः पिछली सदी में समाजशास्त्रियों ने इसे मातृ तंत्र अथवा मातृ सत्ता का नाम दिया था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे कुछ समाजों में नारियों की स्थिति बहुत उन्नत है। भारत में मातृसत्तात्मक परंपरा, पितृसत्तात्मक परंपरा की अपेक्षा बहुत ही कम क्षेत्रों में प्रचलित हुई प्रतीत होती हैं और अब तो वह नगण्य के बराबर ही रह गई है। प्राचीन भारत में भी हमें मातृसत्तात्मक परंपरा के प्रचलन के कुछ साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

भारत में प्राचीनतम सैंधव सभ्यता से प्राप्त बहुसंख्यक नारी मूर्तियों को देखकर यह अनुमान लगाया गया है कि यहाँ मातृसत्तात्मक परंपरा विद्यमान थी। परन्तु यह कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत नहीं होता है। अपितु इसके संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि सिंधु सभ्यता में नारी की स्थिति सामान्य थी। नारी की स्थिति सम्मानजनक होते हुये भी यह समाज पुरूष प्रधान ही था। पुरूष की प्रधानता होने पर भी नारी की यौनिकता को कोई खतरा नहीं समझा जाता था, तथा मातृत्व और प्रजनन में छिपी नारी शक्ति की पूजा होती थी। [20]

आर्यों द्वारा भारत के बड़े भू–भाग पर कब्जा कर लेने और यहाँ के मूल निवासियों को जिन्हें वे जातीय तौर पर अपने से हीन समझते थे को अपने अधीन कर लेने के बाद वर्गों में बंटा हुआ समाज विकसित हुआ और धीरे–धीरे नारी शक्ति की पूजा (मातृसत्तात्मक परंपरा) की जगह पितृसत्तात्मक परंपरा ने ले ली। [21] अपने अधीन की हुई जाति के लोगों में आर्यों ने अधिकांश पुरूषों को मार डाला तथा नारी को दास बना लिया। भारत की धरती पर दास बनाया जाने वाला पहला समूह नारी का था। [22] नारी की दासता के साथ ही दास प्रथा को संस्थागत रूप मिला। [23] बुनियादी स्तर पर पितृसत्ता की स्थापना के लिए किसी एक कारण या इतिहास में किसी एक क्षण को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। हम पुरूष प्रभुत्व को जिस रूप में आज देखते हैं उसके पीछे लगभग 2500 सालों 3100 ई. पू. तक की सतत् प्रक्रिया है, जिसके लिए कई घटक और ताकतें उत्तरदायी हैं। [24] गेल आमवेट का यह निष्कर्ष कि नारी विकास के तीन चरण हैं वास्तव में बहुत ही तर्कसंगत प्रतीत होते हैं। वे कहती हैं–

- सबसे प्राचीन मानव समाज मातृकेन्द्रित समूह थे, या जेंडर विहीन खानाबदोश समाज थे।
- शासन तंत्र के गठन के पूर्व के कौटुम्बिक समाज, जिसमें नारी रिश्ते–नातों के माध्यम से सशक्त थी और स्वतंत्र सत्ता रखती थी।
- शासन तथा वर्ग वाले समाज जिसमें आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक तथा धार्मिक तंत्रों के माध्यम से नारी अधीनता पर बल दिया।

यद्यपि आर्यों के आगमन के साथ पितृसत्तात्मक विचारधारा वाले शासनतंत्र का उदय हुआ किंतु उसका सिंधुकालीन मातृसत्तात्मक विचार के लोगों के साथ निरंतर संघर्ष होता रहा। यह तनाव ऋग्वेद में भी प्रायः देखने को मिलता है। कुछ दृष्टांतों से वैदिक आर्यों का नारी समूह के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। [25] भारत के कुछ समाजों में नारी की स्थिति सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों एवं पारिवारिक संरचना से संबंधित है। जिन समाजों में वधू–मूल्य, बहु–विवाह पितृसत्तात्मक परंपरा इत्यादि की प्रधानता है। वहाँ पर नारियों की स्थिति काफी ही निम्न है। इसके विपरीत एक विवाही तथा मातृसत्तात्मक परंपरा प्रधान युक्त कुछ आदिम समाजों में नारियों की स्थिति पुरूषों से ऊंची है। यहाँ पर कुछ ऐसी ही समाजों वाले जनजातियों का उल्लेख किया जा रहा है जिनमें मातृसत्तात्मक परंपरा आज भी विद्यमान है–

खासी जनजाति– खासी असम की पहाड़ियों में निवास करने वाली भारत की एक प्रमुख जनजाति हैं। इस जनजाति में मातृसत्तात्मक परंपरा पायी जाती है और मातृसत्तात्मक व्यवस्था होने के कारण इस जनजाति में नारियों की स्थिति पुरूषों से काफी अच्छी है। इस जनजाति की सामाजिक व्यवस्था यह है कि विवाह के बाद पति, पत्नी को अपने घर न ले जाकर स्वयं उसी के घर में निवास करने लगता है। बच्चों का नामकरण व वंश परंपरा मातृपक्ष की तरफ से निर्धारित होती है। इनके समाज में देवियों की ही पूजा की जाती है। [26] नारी का व्यक्तित्व पुरूष से ज्यादा प्रभावशाली होता है। पुरूष नारी के आदेशों का पालन करते हैं। समाज के पारिवारिक, धार्मिक, राजनैतिक इत्यादि समस्त कार्यों का संपादन में नारियों का मात्र सहयोग करते हैं।

गारो जनजाति–गारो जनजाति का निवास स्थान असम प्रदेश ही है। खासी जनजाति की ही तरह इस जनजाति में भी मातृसत्तात्मक व्यवस्था पायी जाती है। मातृ सत्तात्मक समाज होने के नाते गारो जनजाति में नारी की स्थिति पुरूषों से ऊंची है। वंश परंपरा का निर्धारण मातृपक्ष की तरफ से होता है। पारिवारिक

संपत्ति का उत्तराधिकार पुत्रों की जगह पुत्रियों को प्राप्त होता है। इस जनजाति में नारी तथा पुरूषों में दण्ड का स्वरूप अलग–अलग है। अगर पुरूष व्यभिचार करते हैं तो जातीय पंचायत द्वारा उन्हें मृत्युदण्ड की सजा दी जाती है। इसके विपरीत अगर नारी व्यभिचारणी होती है तो उन्हें हल्का दण्ड दिया जाता है। जैसे उनके कपड़े फाड़ देना, कान छेद देना इत्यादि।

गारो जनजाति में जिस लड़की को परिवार की संपत्ति उत्तराधिकार में मिलती है, उसके पति को नोक्रोम कहा जाता है, तथा दूसरे प्रकार के पतियों को 'चोवारि' कहा जाता है। इस जनजाति में पति अपनी पत्नी के आदेश का पालन करता है। [27]

थारू जनजाति– थारू जनजाति उत्तर भारत के पीलीभीत जिला के नैनीताल तराई क्षेत्र में पाई जाती है। जिस क्षेत्र में इस जनजाति के लोग बसे हुये हैं उसे थरूआर के नाम से संबोधित किया जाता है। इस जनजाति में भी नारी की स्थिति पुरूषों से काफी ऊंची है। पुरूष नारियों के गुलाम होते हैं। नारियों को व्यक्तित्व काफी प्रभावकारी होता है। विवाह के समय वधू मूल्य की प्रथा प्रचलित है। जिसके अनुसार कन्यापक्ष को वरपक्ष विवाह के लिये मूल्यस्वरूप कुछ वस्तुयें या रूपया पैसा देता है। इस समाज की नारी पूर्णरूपेण स्वतंत्र होती हैं। पुरूष उनके आदेशों का पालन करते हैं। पारिवारिक संपत्ति में नारियों का अधिकार होता है। सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी की इच्छा को प्रमुख स्थान दिया जाता है। पुरूष वर्ग रसोईघर में प्रवेश नहीं कर सकते हैं। थारू जनजाति की नारियों के पूर्ण स्वतंत्र होने का इसी तथ्य से प्रमाण मिल जाता है कि यहाँ की नारियाँ पुरूषों की भाँति शराब पीती हैं।

केरल की नायर– भारत के दक्षिणी पश्चिमी हिस्से में बसा केरल प्रदेश मातृसत्तात्मक व्यवस्था के पोषकों का गढ़ रहा है। [28] केरल के उत्तर तथा मध्य भागों में रहने वाले नायर, तिय्यर तथा माप्पिला समूहों में मातृ सत्तात्मक परंपरा का प्रचलन रहा है। साथ ही साथ केंद्रशासित प्रदेश लक्षद्वीप में मातृसत्तात्मक परंपरा को मानने वाले मुस्लिम समुदाय [29] (टिप्पणी) भी है। अनेक नृशास्त्रियों व समाजशास्त्रियों ने नायर नातेदाादी संस्थाओं का वर्णन तथा विश्लेषण किया है।[30] प्रजनन चूँकि नारियों से जुड़ा था इसीलिए नारी की प्रजनन शक्ति के प्रति आदर भाव बना रहा। नारियों के प्रति यह आदरभाव भारत में ही नहीं अपितु दक्षिण एशिया के आदिवासियों में आज भी देखा जा सकता है। नारी तथा पुरुष के बीच यहाँ अधिक अंतर नहीं है क्योंकि दोनों के सहयोग के बिना जी पाना यहाँ संभव नहीं है। [31]

हालांकि भारत के अधिकांश समाजों में पितृसत्तात्मक परंपरा के ही दर्शन होते हैं। मातृसत्तात्मक परंपरा तो कहीं–कहीं पर अपवाद स्वरूप प्राप्त होती हैं पितृसत्तात्मक परंपरा का तात्पर्य यह है कि परिवार का संपूर्ण नियंत्रण पिता के हाथ में होता है। यह परिवार का मुखिया होता है और परिवार के समस्त कार्यों को सुव्यवस्थित तौर तरीके से संचालित करता है। परिवार के अन्य सभी सदस्य पिता के आधीनस्थ रहते हैं और उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं। वह पारिवारिक सदस्यों में से किसी को भी दण्ड देने एवं बेचने का पूरा अधिकारी है।[32] परंतु व्यावहारिक रूप से वह ऐसा नहीं करता। व्यावहारिक रूप से वह परिवार के प्रत्येक सदस्य के प्रति ईमानदार होता था और परिवार के सदस्यों के सुख–दुख का पूरा ख्याल रखता था। पितृसत्तात्मक परंपरा में वंश पिता के नाम से चलता है। इसलिए परिवार में पुत्र का महत्व लड़की से अधिक होता है। इस प्रकार से पितृसत्तात्मक परंपरा वाले परिवारों में पुरुष की स्थिति नारी की स्थिति से ऊँची होती है और पुरुषों का सर्वाधिक सम्मान होता है।[33] श्री सुमिवल चंद्र सरकार [34] तथा कई अन्य विद्वानों ने निम्नलिखित प्रमाणों के आधार पर प्राचीन भारत में प्रचलित मातृसत्ता की कल्पना की है जैसे–

मातृनामों का प्रयोग– ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों तथा अन्य अनेक प्राचीन साहित्यिक ग्रंथों में माता के नाम पर पुत्र का नाम रखने की परिपाटी दृष्टिगोचर होती है। वृहदारण्यक उपनिषद के अंत में बताई गई वंश ब्राह्मण तालिका से प्राप्त सारे नाम इसी प्रकार के हैं। जैसे–गौतमी पुत्र, कात्यानी पुत्र आदि। रामायण और महाभारत में भी अनेकों उदाहरण हैं जैसे–सौमित्रि (सुमित्रा का पुत्र), पाथ, कौंतेय (पृथा या कुंती का लड़का) काद्रवेय, वैनतेय आदि। अर्जुन का चित्रांगदा के साथ विवाह इस शर्त पर हुआ था (महाभारत 1/217/24–25) कि उसका पुत्र माता के साथ नाना के पास रहेगा। मनुस्मृति तथा धर्मसूत्रों में मामा को ऊँचा स्थान दिया गया है। पितृत्व अनिश्चित होने से ही बहुत कुछ संभव है कि मातृमूलक नाम दिए गए हों जिसका सबसे सुंदर उदाहरण सत्काम जाबाल है। [35] परंतु ये सारे प्रमाण मातृसत्ता की परंपरा को व्यापकता एवं सार्वभौमिकता को सिद्ध नहीं करते हैं क्योंकि वैदिक काल से परिवार का स्वरूप पितृसत्तात्मक था। मातृसत्तात्मक परिवारों में काफी अधिक महत्व रखने वाले नाना (मातामह) का उल्लेख अपवाद स्वरूप ही हुआ है और मामा का मातुर्भाता के नाम से केवल एक बार वर्णन हुआ है। [36] मातृनामों का प्रयोग प्राचीन काल से होता रहा परंतु पितृनामों का प्रयोग कहीं इससे अधिक रहा है। जैसा पाणिनि के गोत्रापत्य प्रकरण में अधिकांश नाम पुरुषों के ही हैं। अतः उपरोक्त प्रकट किए गये प्रमाण मातृ सत्तात्मक परंपरा की व्यापकता का प्रसार सिद्ध नहीं करते।

निष्कर्ष

वर्तमानकाल की भाँति कुछ स्थानों पर मातृसत्तात्मक परंपरा का प्राचीन काल में भी अवश्य प्रचलन रहा होगा। जार्ज मर्डक ने सन् 1957 ई0 में इसी संदर्भ में एक सर्वेक्षण किया जिसका निष्कर्ष कीसिंग ने प्रस्तुत करते हुये यह तथ्य उद्घाटित किया कि सारी दुनिया के लगभग 44 प्रतिशत समाजों में पितृसत्तात्मक परंपरा वाला वंशानुक्रम पाया जाता है जबकि मातृसत्तात्मक परंपरा वाला वंशानुक्रम केवल 15 प्रतिशत समाजों में ही शेष समाजों में द्विवंश या द्विवर्ती (उभयवर्ती) सत्तात्मक परंपरा पायी जाती है। उत्तर एवं दक्षिण भारत के विभिन्न भागों में यह पितृसत्तात्मक परंपरा प्राचीन काल से ही विद्यमान रही हैं भारत के विभिन्न भागों में किये गये नृशास्त्रीय एवं समाजशास्त्रीय अध्ययनों से पता चलता है कि इस पितृसत्तात्मक परंपरा के लोगों में सहयोग एवं संघर्ष दोनों पाया जाता है। इस व्यवस्था में पिता से पुत्र की वंश परंपरा में वंश चलता है। यही विशेष कारण है कि प्रायः हर परिवार में पुत्र जन्म की लालसा बनी रहती है और पुत्री के जन्म को 'मनाया' तक नहीं जाता है।

यह परंपरा हमें प्राचीन, मध्य एवं अर्वाचीन कालों में भी देखने को मिलती है। इस परंपरा में पुरुष की अपेक्षा नारी की स्थिति गौड़ है। चाहे वे पुत्री, पत्नी या माता किसी भी रूप में हो। इससे समाज में नारी स्थिति का मान होता है।

परम्पराएँ समाज में पनपती एवं विकसित होती हैं और समय के साथ वे जड़ हो जाती हैं। उनके रूप स्वरूप बन जाते हैं। ये परम्पराएं ऐसा रूप ग्रहण कर लेती हैं और जीवन से ऐसी जुड़ जाती हैं कि उनका विलगाव संभव नहीं हो पाता। मध्यकालीन भारत का परिवेश कुछ ऐसा रहा है कि उस काल में पूर्व रीति–रिवाजों ने जहाँ परम्परा का रूप ग्रहण कर लिया, वहीं अनेकानेक परम्पराएं परवर्तित एवं विकसित भी हुई। इस प्रकार मध्यकालीन भारत का परिवेश परम्पराओं के सर्वथा अनुकूल रहा है।

संदर्भ

1. मिश्रा, अर्चना 2015 – नारी के सामाजिक स्थिति का पुनरावलोकन, विन्ध्य भारती (शोध पत्रिका, अ.प्र.सिं.वि.वि. रीवा, 12;III) पृ. 105–111.
2. मिश्रा, अर्चना 2015 – भारतीय नारी का राजनैतिक स्वत्व और महिला आरक्षण, विन्ध्य भारती (शोध पत्रिका, अ.प्र.सिं.वि.वि. रीवा, 12;IV) पृ. 98–103.
3. सिगमंड फ्रायड– फ्रायड की दृष्टि में सामान्य मनुष्य पुरूष था। जबकि नारी विकृत मनुष्य। फ्रायड की यह सोच शिक्षा के माध्यम से इस युग में सामाजिक कार्यकर्ताओं और आम जनता में लोकप्रिय हो गयी जिसने मध्यकालीन दृष्टिकोण को पुष्ट किया।
4. झा एवं श्रीमाली– प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ–36
5. उमा चक्रवर्ती–कन्सेटचुलाइजिंग ब्राहमनिकल पेटीरयार्की इन अर्ली इंडिया जेंडर, कास्ट क्लास एण्ड स्टेट इकोनामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, पृष्ठ 239।
6. गेल, इसे पुरा प्रस्तर युग या उसके पहले की अवस्था मानते हैं।
7. सोहन संस्कृति जो उत्तर पश्चिम प्रांत सिंधु की सहायक नदियों के किनारे पायी गयी, में इस विकास के लक्षण स्पष्ट रूप से दिखते हैं।
8. भू–वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी लगभग 48 अरब वर्ष पुरानी है और इस पर जीवन 35 अरब वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ।
9. एंगल्स–ओरिजन आफ द फैमिली, प्रायवेट एण्ड द स्टेट पृष्ठ–1881।
10. भारत में पायी जाने वाली अनेक पुरापाषाण कालीन साक्ष्य इस बात का प्रमाण है कि इस संदर्भ में नरसिंहपुर (मध्यप्रदेश) आंध्रप्रदेश तमिलनाडु आदि में पाये गये साक्ष्य।
11. उमा चक्रवर्ती–कन्सेटचुलाइजिंग ब्राहमनिकल पेटीरयार्की इन अर्थी इंडिया जेंडर, कास्ट क्लास एण्ड स्टेट इकोनामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, 3 अप्रैल 1993।
12. नारीवादी शलामिथ फायर स्टोन का मानना है– महिलाएँ प्रजनन के कारण दमित हैं। कमला भसीन–पितृसत्ता क्या है? पृ. 28।
13. गार्ड लार्नर–द क्रियेशन आफ पेट्रियार्की आक्सफोर्ड एण्ड न्यूयार्क पृष्ठ 217।
14. मीस मरिया का शोध पत्र विमनः द लास्ट कालोनी (काली फार विमन 1998 नई दिल्ली)
15. वही।
16. कमला भसीन– पितृसत्ता क्या है? पृष्ठ–23।
17. यह मंत्र कुठ पाठ भेद के साथ निम्न ग्रंथों में मिलता है। पहले दो ''सा त्वमसि अमोऽहम'' का पाठ नहीं है। अर्थव 14/2/71, ऐतरेय 8/27, काठक सं. 35/18 जमैनीय उप ब्रा. 1/54/6, 57/4 शाखा 0 ब्रा. 14/9/19, वृह. उप. 6/4/19,20 आश्वलायन गृहासूत्र 1/7/6 शाखा गृ. सू. 1/13/4 पार. गृ. सू. 1/6/3, आपस्तम्ब मं. ब्रा. 1/3/4 मानव गृ. सू. 1/10/15।
18. मनु–मनुस्मृति–(9/45)
19. हिंदू परिवार मीमांसा–श्री हरिदत्त वेदालंकार, पृष्ठ 328

20. उमा चक्रवर्ती–कन्सेल्चुलाइजिंग, ब्रहमनिकल पेट्रियार्की इन अर्थीइण्डिया जेंडर कास्ट, क्लास एण्ड स्टेट इकानामिक एण्ड पालिटिकल वीकली 3 अप्रैल 1993।
21. वही
22. वही, तथा आर. एस. शर्मा, मिटीरियल कल्चर एण्ड सोशल फारमेशन इन एनिशियेन्ट इंडिया पृष्ठ 38
23. गार्ड लर्नर, द क्रियेशन आफ पेट्रियार्की आक्सफार्ड एंड न्यूयार्क आक्सफोर्ड यूनीवर्सटी प्रेस 1986 पृष्ठ 217।
24. गार्ड लर्नर, द क्रियेशन आफ पेट्रियार्की आक्सफार्ड एंड न्यूयार्क आक्सफोर्ड यूनीवर्सटी प्रेस 1986 पृष्ठ 217।
25. उमा चक्रवर्ती–कन्सेल्चुलाइजिंग, ब्रहमनिकल पेट्रियार्की इन अर्थीइण्डिया जेंडर कास्ट, क्लास एण्ड स्टेट इकानामिक एण्ड पालिटिकल वीकली 3 अप्रैल 1993।
26. एस. के सिंह– सामाजिक मानवशास्त्र, पृष्ठ–56।
27. एस. के सिंह– सामाजिक मानवशास्त्र, पृष्ठ–57।
28. भारत में परिवार विवाह और नातेदारी–शोभिता जैन।
29. टिप्पणी–भारत के दक्षिण पश्चिमी तट से 250–500 मिलोमीटर की दूरी पर अरब महासागर में केरल द्वीपों में मछली मारने खेती करने नारियल एवं अन्य प्राकृतिक उत्पादकों को इकट्ठा करने के लिये लोग जाते हैं। यद्यपि वहाँ कोई रहता नहीं है। जिन द्वीपों में लोग रहते हैं उनके तीन मुख्य नाम हैं, लक्ष्द्वीप समूह, अमीनी द्वीप समूह एवं मिनिकोय।
30. अंतिम द्वीपमिनिकोय सांस्कृतिक एवं प्रजातीय दृष्टि से मालद्वीप द्वीपों में केरल तट से आये प्रवासी हिंदुओं (जो बाद में धर्म परिवर्तन करके मुस्लिम बन गये) के वंशज बसे हुए हैं।
31. उदाहरण के लिए एम0फासेट (1915), कि0एत0पाणिकर (1918) एल0के0 अय्यर (1909–12–32) (1932–34) कैथलिन कफ (1952–61) के0आर0उन्नी (1956) एवं सी0जे0 फुलर (1976) के नाम मुख्य रूप से गिनाये जा सकते हैं।
32. समाजवादी नादीवादी विची विशेनिका की–आन पेट्रियार्की में उद्धत।
33. ऋग्वेद–1.24.12, 15, 5.27।
34. डॉ0 वी0एन0 सिंह, जनमेजय सिंह, ग्रामीण समाजशास्त्र, पृष्ठ 67।
35. सम एस्पैस्ट्रस आफ द आर्लियस्ट सोशल हिस्ट्री आफ इंडिया पृष्ठ 76–78 सरकार के अनुसार यमी की यम से प्रणय याचना, माता पितरौ में माता शब्द का पहले प्रयोग, बहिन की वैदिक परिवार में उच्च स्थिति भी प्रारंभ में मातृसत्ता के प्रमाण हैं।
36. छान्दोग्य उपनिषद–4/4
37. मैत्र0सं0 1/6/12